धराशायी

हो गया उन्मत्त सबल समीर ।
गिर उठे पादप भवन प्राचीर ।
शिला सी दृढ़ तुंग पृथु भी भित्ति ।
निवारित क्या कर सकी आपत्ति ।। 1

मेघ गर्जन पवन कृत हुंकार ।
पीड़ितों का दवाती चीत्कार ।
व्यग्र पशु पक्षी निराश्रित दीन ।
पलायन अक्षम हुए असुहीन ।। 2

यदपि पीछे खड़ा था सुविशाल ।
भवन जिसकी उच्च है दीवाल ।
बन न पाई प्रभंजन अवरोध ।
ले लिया बस वेग ने प्रतिशोध ।। 3

मात्र वात्याचक्र का निर्माण ।
कर उठे अनजान नर निर्माण ।
चल पड़े ज्यों मरुत ही उनचास ।
क्षीण होती चकित जीवन आस ।। 4

तुंग नभ में कर समुन्नत भाल ।
वह खड़ा था जो यहाँ सुविशाल ।
रहा करता पवन का प्रतिरोध ।
अंततः हारा सुदृढ़ न्यग्रोध ।। 5

मूल जो करती शिला को छिन्न
सरलता से भित्ति करती भिन्न
विरलतर यह पवन भी परि भूत
कर गया बन काल का ज्यों दूत ।। 6

कभी रोपित चिर सुपालित वृक्ष ।
पड़े थामें ज्यों धरा का वक्ष
तुंगता में शीर्ष सम अबमूल
उभय को आवृत्त करती धूल ।। 7

अनगिनत मुरझा रहे हैं पत्र ।
चल पड़ा वाष्पीकरण का सत्र ।
मिल गया ज्यों काल का संदेश ।
हो चला पीताभ देखो वेश ।। 8.

पल रहे थे जो असंख्य विहंग ।
उड़ गए वे दे न पाए संग ।
अब पड़े हो भूमि पर म्रियमाण ।
खोजते पतली जड़ों में त्राण ।। 9

नीड़ अन्वेषण निरत कुछ कीर ।
विफल उद्यम हैं अतीव अधीर ।
चहचहाहट स्वर हुए कुछ मंद ।
विगत की क्या वस्तु सुत आनंद ।। 10

ऊर्ध्व या फिर अधर गति अभ्यास ।
था जिन्हें चींटे भ्रमित धृत त्रास ।

मात्र क्षैतिज हुआ गति आयाम ।
लगा उन्नति पर अखंड विराम ।। 11

नहीं तरु तव धरा पर अवपात
मिटा पाया काष्ठ कृंतक साथ
मरण के भी बाद देते कष्ट
नहीं होते पाप फल सम नष्ट।। 12

देख बढ़ता विपुल छाया क्षेत्र ।
मोद से थे चमकते तव नेत्र ।
अन्य पादप का निकट सुविकास ।
नहीं आता था तुम्हें तरु रास ।। 13

कभी करते थे गगन से बात ।
नित्य गाने विरुद–सा खग व्रात ।
देखते गर्वित प्रशाख प्रसार ।
नित्य वर्धित पल्लवों का भार ।। 14

छिपी थी फल राशि पत्तों बीच ।
सतत लाते धरा का वसु खींच ।
मात्र शाखा प्रशाखा थीं पोष्य ।
जननि सम यह धरा थी अवशोष्य ।। 15

आज क्यों लिपटे धरा से दीन ।
पवन ताड़ित हो पड़े श्री हीन ।
विगत वैभव अब न पालो आस ।
अब न भू को रहा तव विश्वास ।। 16

आस से देखो न तुम तनु मूल ।
गए थे जिनको महावट भूल ।
मात्र कुछ पल्लव तुम्हें कर दान ।
रखेंगी वे मूलता का मान ।। 17

काम आती जड़ें क्या वायव्य ।
यह तुम्हारे पतन से दृष्टव्य ।
छोड़ कर निज वास्तविक आधार ।
अन्य आश्रय खोजना बेकार ।। 18

विरुद सुनते थे विरुत के व्याज ।
प्रकंपित दल थे बजाते साज ।
चरण पर धर दीप नत शिर भक्त ।
मांगने बहु वस्तु धन आसक्त ।। 19

आज याचकता हुई सब लुप्त ।
भाव हिंसा के जगे चिर सुप्त ।।
आ गए नर धृत सुतीक्ष्ण कुठार ।
शीघ्र हरने तुम्हारा आकार ।। 20

घेर कर तरु खड़े होते अन्य
कर न पाता कृत्य अनिल जघन्य
रुद्ध करके अन्य का, सुविकास
रोक पाए क्या स्वयं का ह्रास ।। 21

आश्रितों की बलि चढ़ा कर क्षेम ।
सुनिश्चित करते पतित गत प्रेम ।

आत्म रक्षण हेतु हे सुवदान्य ।
प्रशाखा बलि थी न तुमको मान्य ।। 22

मिला था जो तुम्हें नर से नीर ।
उसे रख कर ध्यान में तुम धीर ।
गिरे भी तो बचा कर घर द्वार ।
कौन सहृदय भूलता उपकार ।। 23

पतन मैं भी रहा गौरव ज्ञान ।
इतर तरु आलंब त्यागा जान ।
रहा जिनका अहा! चिर तक साथ ।
क्यों गिरें वे आज मेरे साथ ।। 24

गिरे यद्यपि विषम सह आघात ।
नहीं कुम्हलाते दिए पर पात ।
स्वरस पोषण दिया चिर तक धीर ।
आश्रितों के सदा पालक वीर ।। 25

देख तुमको शान्त और अखिन्न
नहीं पल्लव जानते भू भिन्न
हो चुके हो विगत वसु क्षतमूल
पालते उनको अरति सब भूल ।। 26

देह मैं जब तक तनिक भी प्राण ।
धीर करते आश्रितों का त्राण ।
यही सारे समुद्यम का मूल ।
छू न पाए उन्हें कुछ प्रतिकूल ।। 27

चिंतन

शून्य प्रसरित कर रहा तब यान ।
क्षिप्र क्षति पूरण न क्षम विज्ञान ।।
दीर्घ लेता काल पुनः प्ररोह ।
विवश सहता नर विभूति बिछोह ।। 1

वितत कर शाखा प्रशाखा जाल ।
पत्र निधि युत हुए तुम सुविशाल ।
किया है यदि पवन ने अपकार ।
कहीं दोषी है तुम्हारा भार ।। 2

समुन्नति सहता न चिर तक लोक ।
नयन मैं चुभता प्रखर आलोक ।
सुहृद के भी बदल जाते भाव ।
विकट ऐसा है प्रभाव प्रभाव ।। 3

गुदगुदाता था कभी जो पात ।
प्रशाखा नर्तन प्रवर्तक वात ।
एक क्षण में बन गया रिपु घोर ।
छिन्न कर विश्वास की दृढ़ डोर ।। 4

हारता है स्थूल ही जग मध्य ।
जीतता है सूक्ष्म रह अनवद्य ।
कर अगोचर कर महान विनाश ।
अनघता धरते शमित बहु हास ।। 5

नहीं जड़ का शुभद है उत्कर्ष
शिखर का करता सदा अपकर्ष
जहाँ भी जड़ कर रहे आरोह ।
समुन्नत पाते दुखद अवरोह ।। 6

नहीं केवल वृक्ष, पाता नाश ।
डोलता उत्कर्ष में विश्वास ।
श्री समुन्नति और वैभव लुप्त ।
और होती समाश्रयता सुप्त ।। 7

यदपि उन्नति है सदा ही श्लाघ्य ।
विपुलतर संपत्ति भी आराध्य ।
शीर्ष पर ही किंतु जब अभिवृद्धि ।
सतत होती तो न लाती सिद्धि ।। 8

यदि न गहरा भूमि से संबंध ।
मात्र शोषण का रहा अनुबंध ।
शीर्ष की वह पुष्कला संपत्ति ।
मात्र लाती भयप्रदा कुविपत्ति ।। 9

गहनता ही उच्चता आधार ।
इस रसा में ही सुपोषक सार ।
प्राण द्रव का गात्र में सुप्रसार ।
है जहाँ से मान कुछ आभार ।। 10

मृत्तिका को दबाते जो मूढ़ ।
भूल जाते वे नियम यह गूढ़ ।

खींच लेती है पुनः यह तत्व ।
इसी में मिलते सकल हैं सत्व ।। 11

समझ में आते न नर के ध्येय ।
किंतु परिणति है नहीं अज्ञेय ।
मान उन्नति पंथ जिसको मूढ़ ।
खेद है, नर स्वक्षय पथ आरूढ़ ।। 12

नियंत्रण, अधिगम, अचिर उपभोग ।
संग्रहण आदान के उद्योग ।
मात्र जनते स्वार्थ बहु संघर्ष ।
वीतते हैं व्यर्थ ही वय वर्ष ।। 13

यहां करता हर कुठार प्रहार ।
प्राणदायी पवन का अपहार ।
जानता है मनुज इसका भेद ।
स्वार्थ पर है जीतता यह खेद ।। 14

प्रकृति निधि पर मानना स्वामित्व ।
है असंगत, अन्य भी हैं सत्व ।
मात्र मानव कामना की पूर्ति ।
हित न सर्जित, सर्ग की शुभ मूर्ति ।। 15

मात्र अग ही है न भू संबद्ध ।
सकल चर अस्तित्व है भूबद्ध ।
सकल संसृति निधि स्वकीया भोग्य ।
मानना क्या नर मनीषा योग्य ।। 16

करो मत निज पतन पर तुम शोक ।
कौन सकता है नियति को रोक ।
नहीं मानव वत विहंग कृतघ्न ।
रुद्ध कुलक्षय वीज विसरण मग्न ।। 17

है सनातन प्रवाहोपम सृष्टि ।
. ॠत नियंत्रित सदा आतप वृष्टि ।
मनुज का आगमन है सुनवीन ।
बनाए पर सत्व इसने दीन ।। 18

यदपि सर्जन को कहां विश्राम ।
चलेगी निर्मिति यहां अविराम ।
किंतु नरता दत्त व्रणक्षतदेह ।
शीघ्र होगी स्वस्थ यह संदेह ।। 19

मिला तव सान्निध्य में बुद्धत्व
पार्थ को उपदिष्ट करते तत्व
दिया हरि के तुम्हारा दृष्टांत
सृष्टि क्रम समझा दिया निभ्रांत ।। 20

पुनरुत्थान

देख कर मुझमें बचे कुछ प्राण ।
मृत नहीं यह महातरु म्रियमाण ।
जीवनेच्छा का सुचिर संघर्ष ।
जगाता हममें अमल आदर्श ।। 1

पुनर्जीवन मुझे देने वीर ।
कृत विनिश्चय आगए नर धीर ।
प्रथमतः मैं था बड़ा भयभीत ।
हुआ है अब काल क्या उपनीत ।। 2

वेदना का प्रथम पारावार ।
शाख कृन्तक चली आरा धार ।
छंटी शिर की विपुल दल संपत्ति ।
लगीवय की अन्तिमा निष्पत्ति ।। 3

किंतु विस्मय तब हुआ अतिमात्र ।
जब उठाया यंत्र से मम गात्र ।
उठा सीधा गगन में सुकबंध ।
पुनः भू से कर दिया संबंध ।। 4

और फिर मुझको पिलाया नीर ।
और जाने लगे वे नर वीर ।
बह उठा जो अंग से था क्षीर ।
बना वह मानो नयन का नीर ।। 5

दिए मैंने अनगिनत आशीष ।
हुआ मानव दया पर नतशीश ।
धारते जो कर सुतीक्ष्ण कुठार ।
क्या करेंगे अब अश्रुत उपकार ।। 6

क्या पुनः मनुपुत्र करुणावान ।
हो रहा जीवत्व तरु का जान ।
क्या हुआ भासित सुचिर संबंध ।
प्रकृति का पारस्परिक अनुबंध ।। 7

पुनः जीवन की महत्ता जान ।
क्या करेगा फिर मनुज यशगान ।
एक उसका जो विविध धर रूप ।
व्याप्त जग मैं है असीम अनूप ।। 8

किया जैसे ही पवित्र विचार ।
हुआ नवला चेतना संचार ।
लोम हर्षण नवल पल्लव व्याज ।
हुआ तरु को धन्य हूं मैं आज ।। 9

उच्चता का विगत है अब मान
विपुल दलता का शमित अभिमान
उतर सा शिर से गया है भार
वेदने !तेरा अमित उपकार ।। 10

पुनः खगता को प्रचुर आहार ।
और कपियों को स्वतंत्र विहार ।

सघन छाया पथिक जन को पूर्ण ।
प्राणवायु प्रवाह दूंगा तूर्ण ।। 11

सृजन विजयस्तंभ सा मैं आज ।
खड़ा दृढ़ विस्मित समस्त समाज ।
प्रकंपन पीड़ा दुखद अवपात ।
अब मुझे दुःस्वप्न से प्रतिभात ।। 12

अमल करुणा क्षितिज का विस्तार ।
उच्चता अनुरूप दृष्टि प्रसार ।
सकल संसृति सूत्रता अनुभूति ।
सुनिश्चित करती न क्या भवभूति ।। 13